

कृषकों के भू अधिकार एवं भू सम्बंधों में प्राचीन भारतीय कृषि परंपरा की प्रासंगिकता

बीज शब्द :

स्थायी बंदोबस्त, जमींदार, काश्तकार, मालगुजारी, दखीलकारी, वैधानिक, मौरूसी

प्राचीन भारतीय परम्परा में भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा थी। भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिकार वंशानुगत था, जो भूमि को कृषि योग्य बनाता था। भूमि पर मालिकाना हक उसी का माना जाता था। मुस्लिम शासकों द्वारा भी भूमि व्यवस्था में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया गया। प्राक् ब्रिटिश भारत में जमींदार वास्तव में राजाओं के नियुक्त किए हुए मालगुजार किसान या हाकिम होते थे। ब्रिटिश काल में स्थायी बंदोबस्त के जरिए भारत में ब्रिटिशकालीन जमींदारों का सृजन हुआ। जमींदार भूमि के स्वामी हो गए, उन्हें भूमि में स्वामित्व और दखीलकारी अधिकार प्राप्त हो गए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत काश्तकार अपने भूमि संबंधी अधिकारों के लिए पूर्णतः जमींदारों पर निर्भर थे, जिसने एक शोषणकारी अर्थतंत्र को जन्म दिया। प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था के अंतर्गत भूमि का मालिक वहीं होता था, जो उस पर कृषि करता था। लम्बे कालखंड में हम देखते हैं कि जब तक भारतीय कृषि अपने परंपरागत प्राचीन आधारों पर संचालित होती रही तब तक कृषि करने वाले कृषक और शासक वर्ग के मध्य किसी प्रकार का संघर्ष नहीं दिखाई देता। कृषि, कृषक एवं राज्य के पवित्र संबंध को ब्रिटिश सरकार ने न केवल समाप्त किया बल्कि आधुनिकीकरण के नाम पर नए-नए कानून लागू किये, जिनका प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक भू-राजस्व की वसूली था। जिसने व्यापक स्तर पर कृषक असंतोष को जन्म दिया परिणाम यह हुआ कि जिस समय स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था उसी समय किसान इस शोषणकारी व्यवस्था से निजात पाने के लिए संघर्ष कर रहे थे।

डॉ० अंशु चौधरी

सहायक आचार्य, पाश्चात्य इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

कृषकों के भू अधिकार एवं भू सम्बंधों में प्राचीन भारतीय कृषि परंपरा की प्रासंगिकता

भारत में भूमि कभी-भी राज्य की वयैक्तिक संपत्ति नहीं रही। जमीन की पैदावार के अंशमात्र पर ही राजा या उसके प्रतिनिधि का अधिकार था और यह अंश सारे गाँव की ओर से पंचायत देती थी।¹¹ मिलिन्दपञ्चो में ऐसे व्यक्ति का उल्लेख आया है जो भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए जंगल साफ करता है तथा कुछ अन्य कदम उठाता है, और चूँकि वह भूमि को इस्तेमाल में लाता है, इसलिए वह उसका मालिक कहा जाता है।¹² मनु द्वारा भी इस व्यवस्था की पुष्टि की गई है।¹³ मुस्लिम शासकों द्वारा भूमि व्यवस्था में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया गया। अबुल फजल और अन्य समसामयिक लेखकों की रचनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत में भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा आदि काल से चली आ रही थी। भूमि पर स्वामित्व का अधिकार मुख्यतः वंशानुगत था।¹⁴ मुस्लिम शासनकाल में भू-स्वामित्व किसानों में निहित था, सरकार में नहीं। यह इस बात से और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि मुगल सम्राट अकबर द्वारा किला बनवाने के लिए इलाहाबाद और अकबराबाद में किसानों से भूमि खरीदी गयी थी।¹⁵

ब्रिटिश काल के पूर्व व्यवस्था के अधीन जमींदारों को जो अधिकार प्राप्त थे उनके बारे में मतभेद है, पर यह स्वीकार किया जाता है कि मुगल जमींदारी व्यवस्था वंशागत अधिकार की थी। समय पर लगान देते रहने पर जमींदारों को हटाया नहीं जाता था। लगान केवल उसी भूमि पर लगाया जाता था, जो जोती जाती थी। जमींदारों पर कर का दबाव कम था और भूमि से उनको काफी मुनाफा होता था।¹⁶ प्राक ब्रिटिश भारत के जमींदार वास्तव में राजाओं के नियुक्त किए हुए मालगुजार किसान या हाकिम होते थे। मालगुजारी के लिए उन्हें कमीशन मिलता था।¹⁷

सबसे पहले कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमीन के स्थायी बंदोबस्त के जरिए भारत में ब्रिटिशकालीन जमींदारों का सृजन किया। अंग्रेज शासकों के राजनीतिक पूर्वाधि कारियों ने इन प्रांतों में जिन तहसीलदारों को कमीशन के आधार पर भूमि कर की वसूली का अधिकार दिया था, उन्हीं में से जमींदारों के इस नए वर्ग की सृष्टि हुई। पहले के जितने ऐसे तहसीलदार थे वे सब स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था में जमींदार हो गए।¹⁸ संयुक्त प्रान्त जिसे वर्तमान में उत्तर प्रदेश के नाम

से जाना जाता है, इस व्यवस्था से आच्छादित क्षेत्र में मिला था जिसमें अवध एवं उत्तरी पश्चिमी प्रान्त (आगरा क्षेत्र) था। संयुक्त प्रान्त के सन्दर्भ में सर्वप्रथम बनारस और उससे लगे हुए पूर्वी उत्तर प्रदेश में 1795 के प्रावधान 6 से बंगाल के 1793 के स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था के आधार पर गाँव के जमींदारों के साथ स्थायी बंदोबस्त किया गया।¹⁹ गाजीपुर, बलिया जिले और मिर्जापुर तथा आजमगढ़ के कुछ क्षेत्र सम्मिलित थे।¹⁰

स्थायी बंदोबस्त द्वारा जमींदारों द्वारा देय मालगुजारी स्थायी तौर पर निश्चित कर दी गई। यह लगान से होने वाली आय का 90% थी। यह बंदोबस्त स्थायी था इसलिए इसके अन्तर्गत निश्चित की गई मालगुजारी का पुनरीक्षण भी नहीं हो सकता। इस बंदोबस्त का प्रमुख परिणाम यह हुआ कि किसानों का भूमि से स्वामित्व समाप्त हो गया, जमींदार भूमि के स्वामी हो गए, उन्हें भूमि में स्वामित्व और दखीलकारी सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हो गए।¹¹ जमींदारों को अपनी जमीन बेचने, गिरवी रखने या हस्तांतरित करने का अधिकार था। उनके उत्तराधिकारी जमीन और उससे जुड़े अधिकारों और दायित्वों, दोनों को विरासत में प्राप्त कर सकते थे। 1793, 1799 और 1812 में अधिनियमित विनियमों ने जमींदारों को उन काश्तकारों की संपत्ति जब्त करने का अधिकार दिया जो किसी भी अदालत की मंजूरी की आवश्यकता के बिना किराया देने में विफल रहे।

जमींदारों/तालुकेदारों को औपनिवेशिक शासन की औपनिवेशिक जरूरतों को पूरा करने के लिए सबसे ज्यादा उपादेय और प्रभावशाली मानते हुए इन्हें स्वाभाविक नेताओं की तरह चिह्नित किया गया और इसी के साथ तालुकेदार ब्रिटिश नीति के केन्द्र में आ गए। औपनिवेशिक शासन और तालुकेदारों के सम्बन्धों द्वारा इस प्रभावशाली वर्ग को पुनः परिभाषित किया गया और विशेषीकृत समूह के रूप में स्वीकारा गया। अब तालुकेदार शब्द ने एक संक्षिप्त वैधानिक अर्थ प्राप्त कर लिया।¹² जिस तालुके के साथ उनका सम्बन्ध था, उसमें राजस्व से सम्बन्धित सभी सुविधायें सरकार के द्वारा उन्हें प्रदान कर दी गयीं।¹³

स्थायी बंदोबस्त का औपनिवेशिक भारत के सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। काश्तकारों ने इस व्यवस्था से न केवल भूमि पर अपना मालिकाना हक खोया बल्कि उन्हें अन्य दमनकारी और शोषणकारी परिस्थितियों

का भी सामना करना पड़ता था जैसे ऊंची लगान मांगों को पूरा करने के लिए किसानों को अक्सर ऋण लेना पड़ता था और भुगतान न कर पाने पर उन्हें भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। औपनिवेशिक भू-राजस्व व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि जो लोग भूमि को काशत करते थे उनका उस पर कोई अधिकार नहीं था और जो भूमि को स्वयं काशत नहीं करते थे उनका भूमि पर अधिकार था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत काशतकार अपने भूमि संबंधी समस्त अधिकारों के लिए भू-स्वामियों पर निर्भर करते थे। उनसे ली जाने वाली काशतकारी की दर कभी भी बढ़ाई जा सकती थी और भू-स्वामियों की इच्छानुसार उन्हें कभी भी बेदखल किया जा सकता था क्योंकि भूराजस्व से मिलने वाला कर सबसे अधिक था और सरकार इसे बिना रुकावट के पाना चाहती थी। इस अस्थिरता और विरोधाभास ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर अत्यन्त नकारात्मक प्रभाव डाला। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव ब्रिटिश सरकार के राजस्व संग्रहण पर भी परिलक्षित हुआ। घटते हुए उत्पादन एवं काशतकारों की दयनीय दशा ने भी सरकार को बाध्य किया कि काशतकारों को कुछ विशेष शर्तों के साथ जमीन पर दखल रखने के अधिकार प्रदान किए जाएँ।

इस दिशा में आगरा प्रान्त में लागू किया गया रेंट रिकवरी ऐक्ट 1859 निस्संदेह काशतकार की स्थिति में सुधार लाने का सदाशयपूर्ण प्रयास था जो इस सिद्धान्त को निश्चित करता है कि निर्बाध रूप से 12 वर्षों तक खेती करने वाले काशतकार को बेदखल नहीं किया जायगा भले ही उसे पट्टा मिला हो या नहीं।¹⁴ इसी क्रम में अवध समझौते के अन्तर्गत 1868 के अधिनियम 19 से उन सभी काशतकारों को दखीलकारी अधिकार दिया गया, जो पिछले 30 वर्षों से लगातार किसी भूमि पर काशत कर रहे थे।¹⁵ उनका यह अधिकार आनुवांशिक तो था, लेकिन स्थानांतरित नहीं और जब तक काशतकार अपनी निश्चित काशतकारी देता रहेगा, उसे बेदखल नहीं किया जाएगा। इस अधिनियम के माध्यम से वस्तुतः अवध में पहली बार भू-स्वामी तथा काशतकारों के संबंध को वैधानिक आधार देने का प्रयास किया गया।

यह अधिनियम यद्यपि बहुत विनम्र उपाय था परन्तु वास्तविक काशतकारों को कोई राहत नहीं दे पाया और वे मात्र “दया आधारित काशतकार” ही बने रहे। कठिन परिश्रम करने के बाद भी भूखे रह जाने की भाग्यवादिता ही इनका जीवन अध्याय बनी रही। इनके काशत की कोई सुरक्षा नहीं थी,

इसलिए वे इस बात से आश्वस्त नहीं हो पाते थे कि जमीन की बेहतरी के लिए जो काम वो कर रहे हैं, उसका लाभ वे उठा पायेंगे या नहीं। काशत में किसी भी तरह के सुधार के लिए दो चीजें बहुत जरूरी थी - काशतकारी की निरंतरता तथा इस बात की निश्चितता कि मनमाने ढंग से मालगुजारी न बढ़ा दी जाए।

1881 के आकड़ों के अनुसार अवध क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 72.59 प्रतिशत कृषि कार्यों में लगा हुआ था, जिसमें 4 प्रतिशत भूमिस्वामी थे, 70 प्रतिशत काशतकार और 25 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे।¹⁶ अवध की कृषि योग्य भूमि का केवल 1 प्रतिशत ही ऐसे काशतकारों के हाथ में था, जो सुरक्षित थे।¹⁷ शेष 99 प्रतिशत भाग के काशतकार न केवल असुरक्षित थे बल्कि भू-स्वामियों के शोषण के शिकार थे। इसी प्रकार आगरा में जहां 1880 तक दखीलकारी काशतकारों के पास संपूर्ण आगरा की कृषि योग्य भूमि का 36.5 प्रतिशत था, वहीं अभी भी 38 प्रतिशत काशतकार जमींदार की स्वेच्छा पर रहने वाले काशतकार थे।¹⁸ अवध एवं आगरा क्षेत्र में दखलकारी काशतकारों की संख्या में बढ़ा अन्तर दोनों क्षेत्रों की अलग-अलग भू-व्यवस्थाओं के कारण था।

Percentage of cultivated land occupied by different classes

Classes	Percentage
By proprietors as Sir	16.0%
By proprietors but not as Sir	8.0%
Privileged Tenants	7.0%
Occupancy Tenants	36.5%
Tenants at will	38.5%

फ्रॉम सेक्रेटरी टू गवर्मेंट, नार्थ वेस्ट प्रोविन्सेज एंड अवध, टू सेक्रेटरी टू द गवर्मेंट ऑफ इण्डिया, डिपार्टमेंट ऑफ रेवेन्यू एंड एग्रीकल्चर, नं० 3939, आर 21 दिसम्बर 1883, फाइल नं० 1950, अवध जर्नल, यू०पी०एस०ए०, लखनऊ, पृ०सं० 53।

1880 के बाद ऐसी कई गतिविधियाँ हुईं, जिन्होंने सरकार को बाध्य किया कि वे काशतकारों के लिए सुरक्षात्मक कदम उठाएं। एक ओर 1880 के बाद यातायात के साधनों का विकास हो रहा था और संचार के साधनों में वृद्धि हो रही थी। दूसरी ओर इसी समय फसलों के मूल्य में भी वृद्धि हो रही थी, जिसका प्रध्वन कारण था वाणिज्यिक गतिविधियों का बढ़ना। 19 बढ़ते हुए वाणिज्य ने कृषि की उन्नति के लिए यह आवश्यक कर दिया कि काशतकारों को कुछ हद तक भूमि पर स्वामित्व दिया जाए। इस प्रकार 1886 के अवध मालगुजारी

अधिनियम में पहली बार असुरक्षित काश्तकारों को 7 साल तक अपनी जोत पर काबिज रहने का वैधानिक हक दिया गया। 20 अर्थात् काश्तकारों को सात साल से पहले बेदखल नहीं किया जा सकता। इसी अधिनियम से विधिबद्ध काश्तकारों की एक श्रेणी बनाई गई जिसमें सभी गैर दखीलकारी काश्तकार शामिल थे इस अधिनियम के बनने के बाद अवध के लगभग 78 प्रतिशत काश्तकार विधिबद्ध काश्तकारों की श्रेणी में आ गए। 21 लेकिन वास्तव में न तो काश्तकारी बढ़ाने की गति में कोई परिवर्तन आया न ही बेदखली में। एक काश्तकार को काश्तकारी की शेष धनराशि न देने, भूमि को उपकाश करने या उसका अनुचित प्रयोग करने पर तो बेदखल किया ही जा सकता था, इसके अलावा भू-स्वामी के पास हमेशा यह अधिकार था कि वो अपनी इच्छानुसार वैधानिक अवधि की समाप्ति (सात वर्ष) के उपरान्त कभी भी भूमि ले सकता था।²²

वहीं आगरा प्रान्त में आगरा काश्तकारी अधिनियम 1901 ने यह सुनिश्चित किया कि ऐसे काश्तकार जो किसी जमींदार की भूमि पर 12 वर्ष से काबिज हैं उन्हें दखीलकारी काश्तकार बना दिया जाए।²³ इसके पहले काश्तकारों को 12 वर्ष तक निरंतर काबिज रहने पर ही दखीलकारी अधिकार दिया जाता था और 12 वर्ष के अन्दर कब्जे की निरंतरता के भंग होने पर उसे दखीलकारी अधिकार प्राप्त नहीं होते थे। वस्तुतः आगरा के दखलकारी काश्तकार अवध के दखलकारी काश्तकारों के समान ही अधिकार रखते थे लेकिन आगरा के काश्तकारों के पास यह अतिरिक्त लाभ था कि वो 12 वर्ष तक लगातार भूमि जोत कर दखलकारी काश्तकारों की श्रेणी पा सकते थे जो अवध के काश्तकारों को नहीं प्राप्त था।

1920-21 के दशक में कृषक असंतोष और कृषकों की उग्र गतिविधियों एवं वर्ग चेतना ने सरकार को अत्याधिक व्यग्र किया। सरकार यह भली-भाँति जानती थी कि काश्तकारों की समस्या वाजिब थी और इसे दूर नहीं किया गया तो इस तरह के किसान विद्रोह से बच पाना कठिन होगा और सरकार ने काश्तकारी विधान में काश्तकारोन्मुख संशोधन की बात शुरू कर किसानों में उम्मीद की एक किरण जगायी। अवध मालगुजारी अधिनियम-1921 द्वारा वैधानिक काश्तकारों को आजीवन भू अधिकार उपलब्ध कराया गया। प्रत्येक जमींदार के लिए यह अनिवार्य किया गया कि वो काश्तकार को लगान अदायगी की पूर्ण रसीद उपलब्ध कराये।²⁴ इस नवीन विधान द्वारा उपकाश्तकारों के अस्तित्व को स्वीकार किया गया व उन्हें

दो वर्ष के भू-अधिकार की सुविधा प्रदान की गई।²⁵ एवं वैधानिक काश्तकारों की मृत्यु के उपरान्त उनके उत्तराधिकारी का पाँच साल का निर्विघ्न अधिकार सुरक्षित किया गया।²⁶ इस प्रकार अवध मालगुजारी संशोधन अधिनियम-1921 से अब 90 प्रतिशत अवध के काश्तकार जीवनपर्यन्त सुरक्षित थे और पुरखों की मृत्यु के उपरान्त उनके उत्तराधिकारियों को भी पाँच साल का संरक्षण प्राप्त था।²⁷ जबकि आगरा क्षेत्र के 59 प्रतिशत काश्तकार ही सुरक्षित थे एवं 41 प्रतिशत काश्तकार असुरक्षित। इस विधिक असमानता को दूर करने के लिए आगरा काश्तकारी अधिनियम, 1926 द्वारा आगरा के काश्तकारों को भी अवध के काश्तकारों के समान वैधानिक काश्तकार बना दिया गया। इस प्रकार बनाए गए अधिनियमित काश्तकार आजीवन भूमि को धारण कर सकते थे और उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके उत्तराधिकारियों को यह अधिकार 5 वर्ष की अवधि के लिए प्रदान किया गया।²⁸

Areas of Tenant's holding in acres in the year 1919-20

Agra	Acres	Percentage	Oudh	Acres	Percentage
Expropriatory Tenants	5,47,466	2.53	Under proprietors	4,875.69	5.57
Occupancy Tenants	10,186,362	47.20	Expropriatory and Occupancy Tenants	1,40,379	1.61
Total	10,733,823	49.73	Total	6,27,948	7.28
Held under seven years leases	9,17,069	4.25	Statutory i.e. resident tenants with life interest and five years to the heir	73,04,514	83.51
Recorded as held for 12 Years and over	39,80,426	18.44	Non Residents	81,3,766	9.31
Recorded as held under 12 Years	59,53,191	27.58			
Total	10,850,686	50.27	Total	81,18,290	92.32
Grand Total	21,584,514	100.00	Grand Total	87,46,238	100.00

लेटर फ्रॉम जी०बी०एफ० म्यूर, एम०एल०सी०, आई०सी०एस०, सेक्रेटरी टू गवर्नमेन्ट, यूनाइटेड प्रोविन्सेज, टू द सेक्रेटरी टू द गवर्नमेन्ट ऑफ 87ए46ए238 100.00 इण्डिया, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, दिल्ली, लखनऊ, नवम्बर 1921, फाइल न० 174/1921, बाक्स नं० 39, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, यू०पी०एस०ए०, लखनऊ, पृ०सं० 3।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत जब प्रान्तीय विधान मंडल के सदस्यों का चुनाव हुआ तो जमींदार वर्ग को विधान मण्डल में अपेक्षित जगह नहीं मिली। संयुक्त प्रान्त के काश्तकारों ने अन्य दलों जैसे नेशनल एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग की अपेक्षा कांग्रेस को तरजीह दी। कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने काश्तकार वर्ग की दशा सुधारने के अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों को प्राथमिकता पर रखा। संयुक्त प्रान्त के प्रधानमंत्री पंतजी ने 2 अगस्त को कौंसिल की मीटिंग में अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को दोहराते हुए कहा कि किसानों की समस्या के हल के लिए समिति नियुक्त की घोषणा की।²⁹

समिति ने सुझाव प्रस्तावित किए कि सभी काश्तकारों को भूमि में पूर्ण सुरक्षा मिले, सभी वैधानिक काश्तकारों को पुश्तैनी भू-अधिकार प्राप्त हो साथ ही उन सीर भूमि के काश्तकारों को भी पुश्तैनी भू अधिकार प्राप्त हो जो उस भूमि पर 5 वर्ष से काश्त कर रहे हो। उन सीर भूमि के काश्तकारों को वैधानिक काश्तकार का दर्जा दिया जाए जो सीर भूमि में 2 वर्ष से अधिक परन्तु 5 वर्ष से कम समय से कृषि कर रहे हो।³⁰

एक लम्बे विचारधारात्मक संघर्ष, समिति की संस्तुतियों के आधार पर 6 दिसम्बर, 1939 को गवर्नर की सहमति प्राप्त होने के बाद 1939 के अधिनियम संख्या &XVII के रूप में यू०पी० काश्तकारी अधिनियम, 1939 पारित हुआ। इस अधिनियम ने मौरूसी काश्तकार को जन्म दिया और पूर्ववर्ती वैधानिक काश्तकार एवं उनके उत्तराधिकारियों को मौरूसी काश्तकार बना दिया। अधिनियम द्वारा यह भी उपबंध किया गया कि सीर भूमि के वे काश्तकार, जो इस अधिनियम के अन्तर्गत मौरूसी काश्तकार नहीं बन पाए हैं उन्हें अधिनियम के लागू होने से 5 वर्ष तक बेदखल नहीं किया जा सकेगा।³¹

1936 के फैजपुर कृषि कार्यक्रम में कांग्रेस द्वारा यह घोषणा की गई थी कि काश्तकारों के सभी वर्गों को वंशानुगत अधिकार दिये जायेंगे,³² लेकिन इस अधिनियम से केवल वैधानिक काश्तकार व उनके उत्तराधिकारियों को ही वंशानुगत अधिकार दिया गया। भूमि संबंधी कागजों की देखरेख पटवारी के हाथ में थी और पटवारी स्वयं भूस्वामियों के सदस्य होते थे इसलिए वह इन कागजों में फेरबदल कर सकते थे। अधिनियम में इस तरह की कमी के कारण पूर्व में (1936 तक) जो काश्तकार (357%) वैधानिक काश्तकार की श्रेणी में आते

थे।³³ उनमें से भी 1945 तक केवल 31% को ही वंशानुगत अधिकार प्राप्त हुआ।³⁴

उपकाश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए अधिनियम में यह प्रावधान रखा गया कि जो भूस्वामी 250 रुपए प्रतिवर्ष से अधिक भू-राजस्व देते हैं, उनकी 50 एकड़ से अधिक की सीर की भूमि पर उन काश्तकारों को वंशानुगत अधिकार प्राप्त हो जाएंगे जो इसे 5 वर्ष से लगातार काश्त कर रहे हैं, लेकिन प्रान्त में लगभग 60% भूस्वामी ही ऐसे थे, जो 250 रुपए से अधिक भूराजस्व अदा करते थे और वो केवल प्रान्त का 33% ही सीर रखते थे, इसलिए इस आधार पर प्रान्त के केवल 1/8 (12.50%) भाग के उपकाश्तकारों को ही ये अधिकार प्राप्त होने की संभावना थी। जिससे केवल 10 प्रतिशत भू स्वामियों के अधिकार ही प्रभावित होते।³⁵

अपनी तमाम विसंगतियों के बावजूद संयुक्त प्रान्त काश्तकारी अधिनियम 1939 से वैधानिक काश्तकारों को पुश्तैनी भू अधिकार मिला, नजराना को अवैध करार दिया गया, रसीद अदायगी को अनिवार्य किया गया, लगान बढ़ोतरी को निश्चित आधार देने का प्रयास किया गया, सीर भूमि वृद्धि को नियंत्रित किया गया तथा सीर भूमि के काश्तकारों को भी सुरक्षा देने का प्रयास किया गया। इन सभी पूर्ववर्ती विधानों द्वारा काश्तकारों पर जमींदारों का नियंत्रण कमजोर हुआ। किसानों की मांगें धीरे-धीरे अधिक सैद्धान्तिक और स्पष्ट होती जा रही थी और जमींदारी व्यवस्था को दी जा रही चुनौतियाँ भी और अधिक मुखर होती जा रही थी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1936 ई० के लखनऊ अधिवेशन में जमींदारी उन्मूलन का सिद्धान्त स्वीकार किया था। दिसम्बर 1937 में इलाहाबाद पॉलिटिकल कांग्रेस की सभा में पुरुषोत्तम दास टंडन ने जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करने का प्रस्ताव किया। 1937 में जब संयुक्त प्रान्त में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमण्डल बना तो इसने भूमि-सुधार का कार्य अपने हाथ में लिया और यू.पी. काश्तकारी अधिनियम, 1939 पारित करके किसानों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया था, किंतु, जमींदारी प्रथा को समाप्त करने का वादा पूरा न हो सका। यह निश्चित था कि जमींदारी व्यवस्था का अंत हुए बगैर किसानों की समस्याओं का अंत नहीं था।

1945 ई० में जब संयुक्त प्रान्त में विधानमण्डल का चुनाव होने को था तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जमींदारी

उन्मूलन को चुनाव घोषणा पत्र में रखा। फलस्वरूप कांग्रेस ने जब राज्य में अपना मंत्रिमंडल बनाया तो जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के लिए आवश्यक कार्यवाही की। 8 अगस्त, 1946 को राज्य की विधानसभा ने प्रस्ताव पास किया कि यह विधानसभा जमींदारी प्रथा जो कृषक और राज्य के मध्य मध्यवर्तियों से युक्त है, के उन्मूलन के सिद्धान्त को स्वीकार करती है। सिद्धान्त रूप से सरकार जमींदारी समाप्ति के लिए सहमत थी परन्तु मुआवजे की रकम, शर्तें तथा अन्य मामलात तय होने में लगातार अड़चनें आती गयीं और जमींदारी प्रथा की समाप्ति में निरंतर बाधाएं पड़ती गईं, अंत में जमींदारी समाप्ति का बिल 1952 में जाकर स्वीकृत हो सका।³⁶

जमींदारी व्यवस्था भारतीय परम्परागत सिद्धान्तों और विचारों के विपरीत थी क्योंकि पारंपरिक व्यवस्था में किसान को भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त था और जमींदार केवल एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करते थे। पारम्परिक व्यवस्था में जमींदार को भूमि का मालिकाना हक नहीं होता था। इस व्यवस्था में जोतदार और सरकार के मध्य सीधा सम्बंध नहीं था। दोनों के मध्य में जमींदार/तालुकदार/जागीरदार भूमि के स्वामी थे इस व्यवस्था ने ग्रामीण सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्धों के ताने-बाने को अत्यधिक क्षति पहुँचाई। औपनिवेशिक सरकार ने विभिन्न कानून बनाकर, परम्परागत सम्बन्धों में परिवर्तन कर उसे औपनिवेशिक हितों को साधने का माध्यम बनाया। इस व्यवस्था ने सामाजिक विभाजन को तीव्र किया, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को कमजोर किया, कृषि पर निर्भरता में और बढ़ोतरी की।

मुगल कालीन जमींदार या जागीरदार सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रूप से प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन करने वाला राज्य अधिकारी या कर-एकत्रक था, जिसका भूमि पर कोई स्वामित्व नहीं था। ब्रिटिश कालीन भारत में ये तालुकदार या जमींदार अंग्रेजी शासन के द्वारा संरक्षित किए गए और अपने अधीन प्रदेशों के वे व्यावहारिक स्वामी बन गए। इस प्रकार कृषक जो प्राचीन काल में भूमि का स्वामी होता था, अपनी भूमि पर स्थायी, वंशानुगामी अधिकार रखता था, ब्रिटिश काल में खेतिहर मजदूर के समान ही हो गया, जिसका भूमि पर कोई स्थायी अधिकार नहीं था। ब्रिटिश नीतियों ने अपने साम्राज्यिक एवं औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए राज्य, काश्तकार एवं भूमि के मध्य के सम्बन्धों को ऐसा उलझा दिया कि आपसी सहयोग-सामंजस्य पर आधारित प्राचीन उत्पादनकारी व्यवस्था

शोषणकारी व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी।

प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था के अंतर्गत भूमि का मालिक वहीं होता था, जो उस पर कृषि करता था। लम्बे कालखंड में हम देखते हैं कि जब तक भारतीय कृषि अपने परंपरागत प्राचीन आधारों पर संचालित होती रही तब तक कृषि करने वाले कृषक और शासक वर्ग के मध्य किसी प्रकार का संघर्ष नहीं दिखाई देता। शासक वर्ग को अपनी सुरक्षा के लिए किसान एक निश्चित कर देता था जो अधिकांशतः उसकी उपज का एक भाग होता था। विदेशी आक्रांताओं के आने के बाद विशेषकर ब्रिटिश काल में प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था में शोषणकारी परिवर्तन किए गए जिससे प्राचीन कालीन परंपरागत कृषि व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। ब्रिटिश सरकार ने भूराजस्व को आय का प्रमुख स्रोत बनाकर कृषकों पर शोषणकारी कानून लागू किए जिससे भारतीय कृषक भूमि का मालिक नहीं बल्कि भूमि पर खेती करने वाला खेतिहर मजदूर हो गया।

कृषि, कृषक एवं राज्य के पवित्र संबंध को ब्रिटिश सरकार ने न केवल समाप्त किया बल्कि आधुनिकीकरण के नाम पर नए नए कानून लागू किये, जिनका प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक भू-राजस्व की वसूली था। परिणाम यह हुआ कि जिस समय स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था उसी समय किसान इस शोषणकारी व्यवस्था से निजात पाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। इस शोध पत्र में यह विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार औपनिवेशिक भू नीतियों ने एक जटिल भूमि संबंध को जन्म दिया। इस कृषि आधारित सामाजिक आर्थिक संरचना ने परंपरागत ग्रामीण परिवेश का कई स्तरों पर विभाजन किया, जिसमें काश्तकारों ने साम्राज्यवादी शोषणकर्ता के साथ एक देशी शोषणकर्ता वर्ग को अपने समकक्ष पाया और किस प्रकार काश्तकारों के दीर्घकालीन संघर्ष के उपरान्त वे अपने मूलभूत प्राचीन अधिकारों को प्राप्त करने में सफल रहे जहाँ राजा या राज्य का अपने उत्पादनकर्ता वर्ग के मध्य कोई मध्यस्थ नहीं था, जहाँ भूमि का स्वामी वही था जो उस पर कृषि करता था।

सन्दर्भ:

1. ए०आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन पब्लिशर्स, गुडगाँव, 2012, पृ०सं० 71
2. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003, पृ०सं० 159
3. मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 114, 116, अध्याय 10, श्लोक 42
4. हरिश्चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत (भाग 2), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1999, पृ०सं० 85
5. चन्द्र प्रकाश सिंह, उत्तर प्रदेश भूमि विधियाँ, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, 2002. पृ०सं० 3
6. रामलखन शुक्ला, आधुनिक भारत का इतिहास हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2000 पृ०सं० 92-93
7. रजनी पाम दत्त, आज का भारत, ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2004, पृ०सं० 223
8. ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पूर्वोद्धत, पृ०सं० 31
9. आर० पी० सिंह, यू० पी० लैण्ड लॉज, न्यू रायल बुक, 2006 लखनऊ पृ०सं० 13
10. चन्द्र प्रकाश सिंह, उत्तर प्रदेश में भूमि विधियाँ, पूर्वोद्धत, पृ०सं० 3
11. वही, पृ०सं० 3-4
12. थॉमस आर, मेटकॉफ, लैण्ड लाइस एण्ड द ब्रिटिश राज इन नार्थ इण्डिया इन नाइनटिन्थ सेन्चुरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1979, पृ०सं० 167
13. लेटर फ्रॉम सी० क्यूरे, सेक्रेटरी टू चीफ कमिश्नर अवध, टू कमिश्नर एंड सुपरिन्टेंडेंट, लखनऊ डिविजन, 7 अक्टूबर 1861, सर्कुलर बी०/नं० 3305, फाइल नं० 66, अवध जर्नल, यू०पी० एस०ए०, लखनऊ, पृ०सं० 345
14. रेंट एक्ट ऑफ 1859, सप्लीमेंट टू द गवर्मेंट गजट नार्थ वेस्ट प्रोविंसेज इलाहाबाद, 24 मई 1859, गवर्मेंट प्रेस, इलाहाबाद, सेक्शन -टू पृ०सं० 5
15. ऑफ सर्टेन राइट्स एण्ड लाइबिलटीज ऑफ लैंडलॉर्ड्स, अंडरप्रोपराइट्स एण्ड टेनेंट्स चौप्टर प् पार्ट ट फाइल नं० 1950, अवध जर्नल यू०पी०एस०ए०, लखनऊ पृ०सं० 112
16. पेपर्स रिलेटेड टू द बिल टू कन्सालिडेट एण्ड अमेंड द लॉ रिलेटिंग टू रेंट इन अवध, फाइल नं० 1950, अवध जर्नल यू०पी०एस०ए०, लखनऊ पृ०सं० 108
17. अपर्णा, संयुक्त प्रांत में कृषक समस्याएँ और कांग्रेस (1920-39) अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स (प्रा०) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010, पृ०सं० 35
18. फ्रॉम सेक्रेटरी टू गवर्मेंट, नार्थ वेस्ट प्रोविंसेज एण्ड अवध, टू सेक्रेटरी टू द गवर्मेंट ऑफ इण्डिया, डिपार्टमेंट ऑफ रेवेन्यू एंड एग्रीकल्चर नं० 3939 आर, दिसम्बर 1883, फाइल नं० 1950, अवध जर्नल, यू०पी०एस०ए०, लखनऊ, पृ०सं० 53
19. सुशील श्रीवास्तव, कॉन्फ्लिक्ट इन एन अग्रेरियन सोसाइटी अवध (1920-39), रेनोसा पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1995, पृ०सं० 362
20. कपिल कुमार, किसान विद्रोह, कांग्रेस और अंग्रेजी राज (अवध 1866-1922), मनोहर, दिल्ली, 1991, पृ०सं० 26
21. बेडेन पॉवेल, द सिस्टम ऑफ विलेज ऑर महाल सेटेलमेन्ट, V-III~आक्सफोर्ड, 1892, पृ०सं० 250-251
22. स्टेटमेंट ऑफ आब्जेक्ट एण्ड रीजन्स बीईंग एनेज्ज टू बिल टू कन्सालिडेट एण्ड रिलेटिंग टू रेंट इन अवध, 29 जनवरी, 1886, नं० 1950, अवध जर्नल यू०पी०एस०ए० लखनऊ पृ०सं० 128
23. आर०आर० मौर्या, उत्तर प्रदेश भूमि विधियाँ, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2015, पृ०सं० 13
24. द अवध रेंट अमेंडमेंट ऐक्ट, 1921, सेक्शन 131, फाइल नं० 174/1921, बॉक्स नं० 39, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, यू०पी०एस०ए० लखनऊ पृ०सं० 06
25. सुशील श्रीवास्तव, कॉन्फ्लिक्ट इन एन अग्रेरियन सोसाइटी अवध 1920-1939 पूर्वोद्धत पृ०सं० 112
26. लेटर फ्रॉम जी०बी०एफ० म्यूर, एम०एल०सी०, आई०सी०एस०., सेक्रेटरी टू गवर्मेंट यूनाइटेड प्रोविंसेज टू द सेक्रेटरी टू द गवर्मेंट ऑफ इण्डिया, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, दिल्ली, लखनऊ, नवम्बर 1921, फाइल नं० 174/1921, बॉक्स नं० 39, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, यू०पी०एस०ए०, लखनऊ पृ०सं० 2
27. वही, पृ०सं० 3
28. द आगरा टेनेंसी एक्ट, 1926, यूनाइटेड प्रोविंसेज एक्ट III, चौप्टर सस सेक्शन 19 (सी), फाइल नं० 206/1926, बाक्स नं० 47-48, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, यू०पी०एस०ए०, लखनऊ, पृ०सं० 18
29. बी० आर० नन्दा, जनरल पॉलिसी ऑफ गवर्मेंट, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ गोविन्द वल्लभ पंत वॉल्यूम-7, नेशनल आर्काइव्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, पृ०सं० 205
30. विशालाक्षी मेनन फ्रॉम मूवमेंट टू गवर्मेंट, सेज पब्लिकेशन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 2003, पृ०सं० 85-90
31. आर०आर० मौर्या, उत्तर प्रदेश भूमि विधियाँ, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 2015, पृ०सं० 16
32. अग्रेरियन प्रोग्राम, फैजपुर, 1936, फाइल नं० 83,84/1931, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी (ए०आई०सी०सी०) नेहरू मेमोरियल एण्ड म्यूजियम लाइब्रेरी (एन०एम०एम०एल०) नई दिल्ली
33. मटेरियल सप्लाइड टू द मेम्बर्स ऑफ द टेनेंसी एंड लैंड रेवेन्यू कमेटी, फाइल नं० 458(2)/1937, बॉक्स नं० 609-610, रेवेन्यू डिपार्टमेंट, यू०पी०एस०ए०, लखनऊ
34. पी. रीक्स, लैंडलार्ड्स एंड गवर्मेंट इन उत्तर प्रदेश, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1991, पृ०सं० 40
35. विशालाक्षी मेनन फ्रॉम मूवमेंट टू गवर्मेंट, पूर्वोद्धत, पृ०सं० 93
36. चन्द्र प्रकाश सिंह, उत्तर प्रदेश में भूमि विधियाँ, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, 2002, पृ०सं० 11

